ओ३म्

'सृष्टि के रहस्यों के ज्ञान का सरलतम उपाय सत्यार्थ–प्रकाश का अध्ययन'

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

मनुष्य को ईश्वर ने जो मानव शरीर दिया है वह पांच ज्ञान इन्द्रिय, पांच कर्म इन्द्रिय, मन व बुद्धि सहित अनेक अंगों व उपांगों से युक्त है। बुद्धि व मन दो ऐसे अवयव हैं जो अपना–अपना कार्य करते हैं, अन्य सभी भी स्वतः करते हैं। मन आत्मा के संस्कारों, प्रवृत्तियों व ज्ञान के अनुरुप इन्द्रियों को अपने–अपने कार्यों में प्रवृत्त रखता है एवं संकल्प–विकल्प भी करता है तथा बुद्धि चिन्तन व मनन सहित ऊहापोह व सत्यासत्य का निर्णय करती है। साक्षर व सांसारिक ज्ञान से युक्त मनुष्य के सामने समय–समय पर कई प्रश्न आते हैं जिनका उत्तर उसके पास नहीं होता। विज्ञान में भी कई प्रश्नों के उत्तर नहीं है। हमारे व अन्य मतों के धार्मिक विद्वान भी अनेक प्रश्नों का समाधान करने में असमर्थ हैं। इस कारण अनेक मनुष्य प्रश्नों का समाधान न मिलने के कारण मन में आये प्रश्नों की उपेक्षा कर देते है। महर्षि दयानन्द के सम्मुख उनकी युवावस्था व बाद के समय में भी यह प्रश्न आये थे और उन्होंने इनका रहस्य व यथार्थ जानने के लिए ही अपना घर, माता–पिता व कुटुम्बियों का त्याग कर धर्म व सत्य के अनुसंधान का मार्ग अपनाया था। उन्होंने अपने प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए धार्मिक पुरूषों यथा सन्त, महात्माओं, योगियों, विद्वानों, साधकों आदि की संगति कर उनसे जो भी ज्ञान प्राप्त हो सकता था, उसे प्राप्त कर उसका विश्लेषण एवं अन्वेषण किया और सत्य का ग्रहण तथा असत्य का त्याग किया। उनका सारा जीवन ही सत्य के अनुसंधान व सत्य के ग्रहण व असत्य के त्याग का अपूर्व उदाहरण है।

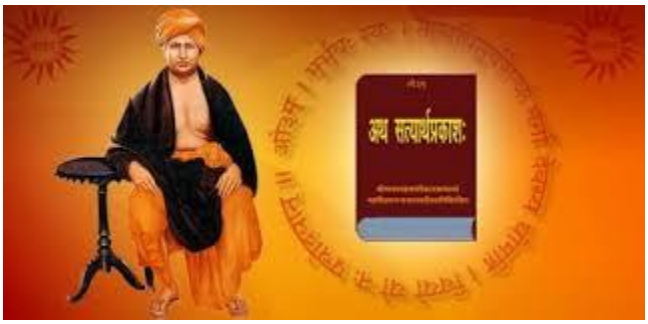

महर्षि दयानन्द का माता पिता द्वारा दिया गया नाम मूलशंकर था। उन्होंने युवावस्था में ही संन्यास ले लिया था जिससे की वह अपना सारा समय सत्य के अनुसंधान में लगा सके। धार्मिक जगत में सत्यानुसंधान के लिए समस्त धार्मिक साहित्य का अध्ययन, ऊहापोह, चिन्तन, मनन, संगतिकरण, तर्क व बुद्धि की कसौटी पर उसे जांचना व परखना, वह ज्ञान सृष्टि क्रम के अनुकूल भी होना आवश्यक होता है अन्यथा वह कोरा अन्धविश्वास व अविद्या कहलाता है, करना होता है। **एक बात और भी महत्वपूर्ण है कि केवल सभी उपलब्ध व खोज कर प्राप्त ग्रन्थों का अध्ययन करने व विद्वान साधु–संन्यासियों की संगति से ही काम नहीं चलता अपितु सत्यानुसंधान के लिए साधक व अन्वेषक का सिद्ध योगी होना भी आवश्यक होता है।** यदि मनुष्य सिद्ध योगी नहीं होगा तो बहुत से सूक्ष्म विषयों पर वह दुविधा व भ्रान्तियों से ग्रस्त हो सकता है जैसा कि प्रायः अद्यावधि होता आ रहा है। महर्षि दयानन्द में यह सभी योग्यतायें अपनी शिखर की स्थिति को प्राप्त थी। उन्होंने अनेक योगियों की संगति कर उनसे योग संबंधी ज्ञान व क्रियाओं को सीखा था व उसका अपनी मृत्यु पर्यन्त अभ्यास करते थे। यद्यपि वह संस्कृत भाषा जानते थे और उन्होंने सहस्रों ग्रन्थ ढूंढ–ढूंढ कर पढ़े भी थे, परन्तु उन्हें जो ज्ञान प्राप्त हुआ था उससे वह सन्तुष्ट नहीं थे। वह एक ऐसे गुरू की तलाश में थे जो संसार व ईश्वर आदि विषयों से संबंधित सत्य व यथार्थ ज्ञान से पूर्ण हो और वह उनको शिष्य स्वीकार कर समस्त विद्यायें व ज्ञान उन्हें प्रदान कर दे। वह अपनी इस उत्कण्ठा के समाधान में सफल हुए और उन्हें आर्ष ज्ञान व वेदों से परिपूर्ण एक योगी संन्यासी प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती का शिष्यत्व प्राप्त हुआ जिनसे उन्होंने वेदों के आर्ष व्याकरण सहित संसार व आर्ष ज्ञान के सभी रहस्यों का निवारण व समाधान तीन वर्षों में प्राप्त किया।

महर्षि दयानन्द ने सन् 1863 में गुरू विरजानन्द जी से अध्ययन पूरा किया था। उन दिनों देश न केवल परतन्त्र था अपितु धार्मिक अन्धविश्वास, अज्ञान, कुरीतियां, सामाजिक विषमतायें आदि अपनी चरम सीमा पर थीं। स्त्रियों व शूद्रों को वेदों के अध्ययन का अधिकार नहीं था। स्थिति यह थी कि शूद्र शब्द का यथार्थ अर्थ ही हमारे समाज के ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य भूल चुके थे और निर्दोष जन्मना शूद्र जाति के बन्धुओं पर अमानवीय अत्याचार करते थे। देश की परतन्त्रता का मुख्य कारण भी वेदों का अप्रचार, अज्ञान, अन्धविश्वास, कुरीतियां जिसमें मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिष, बाल विवाह, मृतक श्राद्ध व सामाजिक असमानता आदि हीं प्रमुख थीं। गुरू की आज्ञा व प्रेरणा से महर्षि दयानन्द ने अपने वेदों के ज्ञान के बल पर सभी अविद्याग्रस्त मतों को खुली चुनौती दी और उनसे शास्त्रार्थ कर वैदिक मत को पुष्ट व सत्य सिद्ध किया। ऐसा कोई आध्यात्मिक धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक प्रश्न नहीं था जिसका उन्होंने समाधान न किया हो। उनकी अनेक देनों में से एक देन यह भी है कि उन्होंने ईश्वर को इस सृष्टि का रचयिता सिद्ध किया है। चार वेदों को उसी ईश्वर द्वारा आदि चार पवित्रात्मा ऋषियों को उनकी हृदय गुहाओं में प्रेरणा द्वारा दिया गया ज्ञान सिद्ध किया है। उन्होंने स्त्री, शूद्रों, क्षत्रिय और वैश्य ही नहीं अपितु मनुष्यमात्र को वेद पढ़ने का अधिकार दिया, जो ईश्वर प्रदत्त है, और इस विषय में यजुर्वेद के अध्याय 26 के दूसरे मन्त्र

'यथेमां वाचं कल्याणीमवदानी जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।।' को प्रस्तुत कर सभी पण्डितों की बोलती बन्द कर दी। देश में कितना अज्ञान था कि महाभारत काल के बाद पांच हजार वर्षों तक किसी धार्मिक विद्वान वा महापुरूष का ध्यान इस वेद मन्त्र पर गया ही नहीं था। **महान आश्चर्य?** इसका परिणाम यह हुआ कि क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र कुलों के पुरूषों एवं कन्याओं ने भी वेदाध्ययन किया और वह सभी वेदों के उच्चकोटि के विद्वान बने। **यह एक तथ्य है कि आज देश में ब्राह्मण कुल में उत्पन्न वेदों के इतने विद्वान नहीं है जितने आर्यसमाज द्वारा स्थापित गुरूकुलों में शिक्षित सभी वर्णों के लोग हैं। महर्षि दयानन्द के बाद जितने भी वेदों के भाष्यकार अद्यावधि हुए हैं वह सभी आर्यसमाज के गुरूकुलों आदि से देश को प्राप्त हुए हैं एवं इनमें हमारे शूद्र कुलोत्पन्न विद्वान बन्धु भी हैं जिन्हें पण्डित जी कह कर आदर दिया जाता है। महर्षि दयानन्द की यह भी एक महान देन है।** यह ईश्वर, वेद और महर्षि दयानन्द द्वारा प्रचारित सिद्धान्तों की सबसे बड़ी विजय भी है।

महर्षि दयानन्द (1825–1883) ने अपने समय में सारे देश में घूम–घूम कर वेदों व वैदिक मान्यताओं का प्रचार व प्रसार किया। लोगों के आग्रह पर उन्होंने वैदिक मान्यताओं व अन्धविश्वासों आदि का बोध कराते हुए एक निर्णयात्मक धार्मिक ग्रन्थ **'सत्यार्थ प्रकाश'** लिखा है जिसमें सभी वैदिक मान्यताओं का पोषण होने के साथ मत–मतान्तरों की अवैज्ञानिक व अज्ञानतापूर्ण मान्यताओं का प्रबल तर्कों व प्रमाणों से खण्डन भी किया है। **इस धर्म ग्रन्थ में महर्षि दयानन्द ने मनुष्य के मन में उठने वाले प्रायः सभी प्रश्नों व शंकाओं के युक्ति, तर्क, शास्त्र व अनुसंधान से पूर्ण सत्य व यथार्थ उत्तर दिये हैं।** उनकी प्रत्येक मान्यता ज्ञान व विज्ञान की कसौटी पर सत्य व अकाट्य है। यही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसका संसार के प्रत्येक मनुष्य कहाने वाले व्यक्ति को निष्पक्ष भाव से अध्ययन करना चाहिये। शाश्वत सत्य ज्ञान से पूर्ण होने के कारण इस ग्रन्थ से सम्प्रदायिकता समाप्त होकर समाज में बन्धुत्व की भावना का विकास होगा। महर्षि दयानन्द की कुछ मान्यताओं का यहां परिचय भी करा देते हैं। उनके अनुसार ईश्वर एक है जो सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनादि, अमर, अनन्त, अभय, कर्मफल प्रदाता, मुक्तिदाता, कर्मानुसार जन्म देने वाला, सृष्टि की रचना, पालन व प्रलय करने वाला है। जीवात्मा एक सत्यस्वरूप, चेतनतत्व, एकदेशी, निराकार, अनादि, अजन्मा, अविनाशी, अमर, कर्म–फल चक्र में बन्धा हुआ, विवेक को प्राप्त कर मुक्ति का लाभ करने वाली, ससीम व अल्पज्ञ सत्ता है। इसी प्रकार से प्रकृति सत्यस्वरूप, जड़ पदार्थ, सत्व–रज–तम गुणों वाली, अजन्मा व अनादि है। इस सूक्ष्म प्रकृति को ही परमात्मा सृष्टि के आरम्भ में रच कर इस ब्रह्माण्ड को बनाता है। सभी मनुष्यों के लिए अपने माता–पिता व आचार्य पूज्य होते हैं। सभी मनुष्य को नित्यप्रति सन्ध्या व हवन के साथ पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ तथा अतिथियज्ञ करना आवश्यक है अन्यथा वह ईश्वर व समाज के प्रति कृतघ्न होते हैं। वेदाध्ययन से सभी शंकाओं व मिथ्याविश्वासों का शमन व दमन होकर मनुष्य सत्य को जान पाता है। सृष्टि की आदि में बड़ी संख्या में ईश्वर ने मनुष्यों को पृथिवी व भूमि रूपी माता के गर्भ से उत्पन्न किया था। वैदिक संस्कृत अलौकिक व ईश्वरीय भाषा है। संसार के सभी मनुष्यों के आदि पूर्वज भारत के तिब्बत नामी स्थान पर सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुए थे। आदि काल में कोई वर्णव्यवस्था न होने के कारण सभी ब्राह्मण थे। वर्णव्यवस्था बाद में अस्तित्व में आई है। यदि वर्णवरूवस्था जन्मना होती तो संसार में सभी ब्राह्मण होते, अन्य कोई वर्ण होता ही नहीं। वेदों के अनुसार विवाह पूर्ण युवावस्था में होना चाहिये। बालविवाह, वृद्धो का विवाह व बेमेल विवाह वेद विरूद्ध है। इसी प्रकार से सत्यार्थ प्रकाश का अध्ययन करने से मनुष्यों की सभी शंकाओं का निराकरण हो जाता है जो अन्य किसी मत के साहित्य व ग्रन्थ को पढ़कर नहीं होता। यह भी बता दें कि जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था, छुआछुत, ऊंचनीच की बातें वेद विरूद्ध होने से पापाचरण है जिनके फल जन्म–जन्मान्तर में मनुष्यों को अवश्यमेव भोगने होंगे। लेख को विराम देने से पूर्व हम आर्यसमाज के दस स्वर्णिम नियमों का भी उल्लेख कर देते हैं जिससे पाठकों को लाभ होगा।

आर्य के नियम इस प्रकार हैं। **नियम 1– सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है। नियम 2– ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तरयामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है। नियम 3– वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना–पढ़ना और सुनना–सुनाना सब आर्यों (मनुष्यों) का परम धर्म है। नियम 4– सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। नियम 5– सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चचाहिये। नियम 6– संसार का उपकार करना, इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। नियम 7– सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये। नियम 8– अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए। नियम 9– प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये। किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। नियम 10– सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।** हम समझते हैं कि पाठकों को इस लेख में प्रस्तुत विचारों से लाभ होगा जिससे हमारा परिश्रम सफल होगा।

–मनमोहन कुमार आर्य
पताः 196 चुक्खूवाला–2, देहरादून–248001
फोनः09412985121